

12.2

ibalbalbalbalbalb

ओ३स्

रत्नाऽक्लिलानन्द्श्रसंप्रणीती

ग्वयसंग्रहः

ा सत्यार्थप्रकाशिकया .कतटाकया भाषाटीकया च समेतः

जन च ईप्रवरस्तुतिकाव्यं, धर्भलक्षणकाव्यं सत्यवर्णनकाव्यं, गण्यवर्णनकाव्यं चेति लघुकाव्यचतुष्ट्यं समुपनिबद्धमस्ति

> राजनियमेन स्वायत्तीकतोस्य भुद्रणाधिकारः

शकाब्दाः १८२९, ख्रिष्टाब्दाः १९७७

वैक्रमाब्दाः १९६४

१५५६मेरठनगरस्ये स्वामिमेशीनयन्त्रे

**मुद्रापितः** 

१०००

मूल्यम् ≡) मार्गव्ययः)॥

d Belindindindindindindindindindindin

pario

ให้เพิ่มในเราการสาวาราชา

The sist of the place of the sister of

:इस्ट्रेइडिस्ट्रिड्<sub>रि</sub>

e e con centralizada Recurso e aciret a vada

> nacia depende e enclose. Grandinosa

**६३५)** कालाहारी हा,वर्गा, राजा

transferrence ferrigation fact.

applies.

BUTTON OF THE PROPERTY OF THE

(क्ष. प्रमण्डलकाः) भारतीयम् । हा

( ccca

## भूमिका



अयि सभ्याः !

किं न दृश्यते भवद्विर्खीके यज्जनाः प्रातरेवो-त्याय [ सियाराम ] [राधेश्यामा] ऽऽदिश-व्दान्सुखादुद्धिरन्तो न केवलमन्तः करणं किन्तु भुवनमपि कलुषयन्ति । नावगच्छन्ति ते कथमीरवरस्मरणं विधेयमिति । प्रातरुत्याय सर्वतः पूर्वं कथमीश्वरस्तुतिर्वि-धेयेति तान्नियोधयितुं सयेदमीश्वरस्तुति काव्यं प्रणीतम्। धर्मज्ञानाय सत्यप्रवृत्तये पापेभ्यो निवृत्तये चान्यद्पि काव्यत्रयम् सर्वलोकोपकाराय संस्कृत-भाषाठीकाभ्या-मपि नियोजितम्। तच्चेदं गृहीत्वा कण्ठस्थं विधाय च कृतार्थाभवन्तु प्रार्थयन्तु च पर-मेखरं येन करणावरणालयः स विस्द्ःखेभ्यो निवार्य सुखमविरतं विद्ध्यादिति शम्॥

भवत्कपापात्रम्-श्रीदयानन्द्लहरीप्रणेता वर्त्तमानकविरत्नम् अखिलानन्द् शर्मा शास्त्री

## को३म् श्रीमते जगदीश्वराय नमः स्रथिश्वरस्तुतिकाव्यं प्रारभ्यते

हे देवदेव करणाणंव दोनवन्धो ! सृष्टिस्थितिप्रलयकारणभूतशक्ते!। दुःखाणंवे निपतितं जगदेतददा शीघ्रं समुद्धर विवर्धय सौख्यजातम्॥१॥

(संस्कृत टीका) हे देव देव !हे करुणार्णव ! हे दीनबन्धो ! हे सृष्टिस्थितिप्रलयकारणभूत शक्ते ! दुःखार्णवे निपाततमेतज्ञगतः कृपया शीघं दुःखात्समुद्धरं,सौख्यजातं चाद्य विवर्धय॥ काव्येत्र वसन्ततिलका वृत्तम् । वसन्ततिलका तभौ जो गाविति छन्दःसूत्रलक्षणात् ॥ १ ॥

(मावा टीका) हे देवों के देव! हे करणा के समुद्र! हे दीनों के रक्षक! हे स्रष्टि स्थिति प्रलयों के कारणक्षय शक्ति वाले! ईश्वर! आज दुःख के समुद्र में डूबे हुवे इस जगत को शीघ्र निकालिये जीर झुखों का समूह कपा करके इस दीन हीन जगत के लिये दीजिये। यही आप से एक प्रार्थना है॥ १॥ न त्वां विहाय जगतां परिपालकीन्यों न त्वां विहाय जगतां परिबोधकोन्यः। न त्वां विहाय जगतामनुमोदकोन्य स्तरमास्वमेव शरणं जगतां दयावन्॥२॥

(सं॰ टी॰) नेति-हे दयावन् ! त्वां विहाय न कोप्यन्यो जगतां परिपालकोस्ति तवैव जगत्परिपालक इतिनामस्मरणात्, न कोप्यन्यः परिवोधकोस्ति वेदमुखेन भवानेव बोधक इति यावत्, न कोप्यन्योनुमोदकोस्ति तवैव सौख्य प्रद इति नामस्मरणात् । अतो भवानेव जगतो स्य इारणिमिति भावः ॥ २ ॥

( भा० टी० ) हे परमास्मन् ! आप के विना इच जगत् का न कोई दूचरा पालन करने वाला है जीर न कोई रस्ता बतलाने वाला है तथा न कोई इच के लिये सुखं का देने वाला है। इस लिये सब प्रकार से आप ही इस के रक्षक हैं और कोई नहीं ॥ २॥

दौर्भाग्यमेव जगतस्तदलं न यत्ते तस्योपरीश्वर दयानयनप्रचारः । पित्रोः कुदृष्टिकरणन्तनयेषु लोके किं भाग्यवत्त्वमनुमापयति स्म कञ्चित्॥३॥ (सं ठी ०) दौर्भाग्यमिति —हे ईश्वर ! तद्छं जगतो दौर्भाग्यमेव, यत्ते तस्योपरि द्यार्द्रनयनप्रचारो न । छोके तनयेषु पित्रोः कुट्टक्रिरणं किं तेषां भाग्यवस्वमनुमापयित ? दौर्भाग्यमेवति भावः ॥ ३॥

(भा० टो०) हे परमात्मन् ! यह क्षेत्रस खगत् का दुर्भाग्य हो प्रतीत होता है को कि आप को उब के जपर द्यादृष्टि नहीं है क्योंकि पुत्रों के जपर माता पिता की कुटूष्टि होना क्या उन के किये भाग्यवाम् होना बतलाया जा सकता है ? कदापि नहीं ॥ ३॥

यदाप्ययं नय उपस्थित एव लोके कर्मानुरूपफलबोधक एकतोलम् । आलोकयेऽन्यत इदं परितोपि वेगा-क्रीसर्गिकं त्विय दयालुपदं निविष्टम् ॥२॥

(तं० टी०) यद्यपीति-ईश्वरो न्यायकारी कर्मानुरूपफल्ड इति नयो यद्यप्येकतो दरी-हृदयते, तथापि स्वभावासिद्धं दयाञ्जरिति पद-मन्यत स्त्विप निविष्टमहमिदमालोकये ॥१॥

( ना० टी० ) यद्यपि कर्मों के अनुकूल फल देने वाले न्यायकारी जाप एक तरफ़ से माने जाते हैं तथापि स्व- फ्रांच ही से आप की बतलांता हुआ द्यांलु पर भी दूसरी तरफ़ दृष्टिगोधर हो रहा है॥ ४॥

वेदानुकूलचिरतानुगतेषु यहिं कारुण्यमीश्वर तवानुगतं मतं चेत्। विस्मृत्य ते पथिमतस्तत एव याताः कं यान्तु संप्रति निबोधय बोधगम्य ॥॥॥ (सं० ठी०) वेदेति हे बोधगम्य परमेश्वर! यहिं ते कारुण्यं वेदानुकूलचिरतानुगतेषु अनुगतं लोकैर्मतं चेत् तहिं ते पथं विस्मृत्य इतस्त तोगताजनाः संप्रति कं बोधियतारमनुयान्तु, त्वमेव निबोधय ॥ ५ ॥

(भाव टीव) है परमात्मन् ! यदि आप की क्यादृष्टि वेद के अनुकूल कमों के करने वालों में ही हो तो भूल से वेद मार्ग को छोड़कर इचर उचर भटकते हुए पुरुषों को अब कीन मार्ग वतलावें, आप ही कहें।। ५।।

मार्गे निबोधय विबोधय निद्रितांस्तान् संबोधय समगतानिप मूढलोकान्। वेगानिवारय कुमार्गरतान्स्वधर्मे इत्तान्तराननु विधेहि कुरु प्रसादम् ॥६॥ (सं० टी०) मार्गिमिति—हे परमेश्वर ! मार्गे निवोधय अविद्यान्धकारे निद्रितान्विवोधय भ्रमजाळपतितान्मूढान्संबोधय कुमार्गरतान्वे-गानिवारय तांश्व स्वस्वधर्मे दत्तचित्ताननुविधेहि जगतामुपर्यनेन प्रकारेण प्रसादं कुरुष्वेतिभावः ६

( प्रा० टी० ) है परमात्मन् ! आय हन छोगों को सीघा मार्ग बतछायें अविद्या के अन्यकार में सीये हुओं को नगार्थे सम जाल में पड़े हुये मूड़ों को छुड़ायें कुमार्ग में चलने वालों को हटाएं अपने २ घर्ष में हमारी हिं को बढ़ाएं, यही आप से प्रार्थना है ॥ ६ ॥

गोमगडलं प्रतिदिनं विलयं समेति तारस्वरेण विधवा विरुद्दन्ति दुःखैः। सीद्दन्ति चार्यनिचया अपि पापपुष्जै रद्गापिनो यदि कृपा तव किं ततःस्यात् ७

(सं० टी०) तव करुणामन्तरा प्रतिदिनं गावोनद्रयन्ति, विधवा रुदन्ति, आर्याश्च सीदन्ति अधुनापि ते कृपा न भविष्यति चेत्कदा तस्या अवसरः समागमिष्यतीति भावः ॥७॥

( भा० टी० ) हे परमान्त्रन् ! हज़ारों गीवों का रोज़ नाश हो रहा है। विचारी विधवा कंचे स्वर से रो रही हैं। आयंगन दुःखी हो रहे हैं। अब सी यदि आप की

नैजेन दुःखमुपयाति कुकर्मणालं लोकोयमित्यपि मृषा न जडानुभावैः । प्राप्तं यसोजनुष्टतां निचयैरमुत्र सर्वं विपत्तिकलनं सहसैव सर्वैः ॥ ६ ॥

(सं॰ टी॰) निजेनैव कुकर्मणा अयं लोको दुःखी भवतीति यत्कथनं तत्सत्यम् यतः या-विद्यात्तिकलनं तावत्सर्वं जडपाषाणपूजामूलक मेव ॥ ८॥

( भा० टी० ) जपने किये हुये जुकर्नी से ही जनुष्य दुःखी होता है ऐसा को कहना है वह भूंठ नहीं क्यों कि जितनी विपश्चियां आपही हैं वह सब मूर्तिपूत्रामूलक हैं द

कालाद्मतस्तव नृतिं प्रविहाय लोकी
यद्गिष्ठिकान्यनुमतानि मतानि तानि ।
कालात्ततो बहुविपत्तयएव लब्धा
स्तत्सांप्रतं कुठ दयामविलेष्वपि त्वम् ॥९॥

(सं० टी०) यस्मात्कालादारभय-हे पर-मात्मन् ! तवोपासनां विहाय लोकेनिजेच्लया नानामतानि है।वशास्त्रवैष्णवादीनि समाश्रिं-तानि तत्कालमारम्य नानाविषत्त्रयएवं छेट्याः सांप्रतमनुकम्पया त्वं रक्ष रक्ष ॥ ९ ॥

( भाग ही । हे ई इवर! जब से मनुष्यों ने एक आप की उपासना को छोड़कर अपनी २ इच्छा से शैव शास्त्र वैष्णव कादि नाना नतीं का आग्रंपण किया तभी से सैकड़ों विपत्तियां निलीं इंचलिये अब आप कर्णांदृष्टि से इस जगत को देखिये॥ ए॥

दुर्भिक्षराजभयरीगवियोगशोकं-मोहादिभिः परिवृतं परिती द्याली। मालोकियिष्यसि यदि त्वभिदं जगतस्वं का तर्हि संप्रति गतिर्भवितास्य देव!॥१०॥

(सं० टी०) हे दयालो ! दुर्भिक्षादिदुः खैः परितः परिवृतं यदीदं जगद्भवात्रालोकयिष्यति तर्हि सांप्रतमस्य का गतिर्भविष्यति । अतः समा-लोकयेति भावः ॥ १०॥

(भा० टी०) है परभात्मन् ! चारी सरफ़ से विपंतियों से चिरे हुये इस जगत, को यदि संब भी भ्राप दयादृष्टि से म देखेंगे तो जिर इस की क्या दुद्धा होगी इस लिये आप बींग्र ही दया की ॥ १०॥

मा चेतचीदमनुकल्पय नो ममैते भक्ताइति प्रणतपालक पूर्णशक्ते!।

नैसर्गिकी जगदनुग्रहता यतस्ते गीता समस्ति व्युचैरिखलं पि विश्वे ॥११॥ (सं० टी०) हे भगवन् ! इमे जना मम भका न इति बुद्धिं हृदये मा कुह यतस्तव सामान्यतय जगदनुग्रहता विवुधैरिखले पि विश्वे गीतास्ति १९

(भाव टीव) है प्रश्नो ! यह जगत् मेरी मक्ति छोड़ जीरों की प्रक्तिमें लगा है ऐसा आप च्यान न करें क्योंकि आप की द्यालुवा तो स्वयं ही भानी जाती है ॥ ११॥

यद्वद्रवि:सकलएव तनीति दीप्तिं चन्द्रोपि सद्वदनुमोदयत्तै मनुष्यान् । मेघोपि वर्षति यथा सममेव लोके तद्वत्त्वमीश्वर विधेहि द्याईदृष्टिम् ॥१२॥ (सं० दी०) यद्वद्वीः सक्छेएव विश्वे दीप्तिं तनोति तद्वत् इन्दुर्शप सर्वानेवाल्हादः यति। मेघश्वाष्यविद्योषेण यथा वर्षति तथा हे परमात्मन् !त्वमप्येकरूपेण दयां विधेहि। वि-होषाविद्योषो मा पद्येत्यर्थः॥ १२॥

(भा० दी०) हे परमात्मन् । जैसे सूर्य शामाप्यतया सब जगह एक सा प्रकाश खरता है, जैसे चन्द्रमा की रोशनी सब जगह एक सी होती है कीर जैसे मेच एक क्रप से सब जगह वर्षा करता है. इसी तरह से जाप भी एक क्रप से सब जगह कपा करें॥ १२॥

किं संहरत्यिप कदापि कुमुद्वतीशो मन्दीकरोति किमहो क्वाचिदप्यलं ताम् । चार्ण्डालवेश्मनि निजां द्युतिमेतदेव सूर्ये पयोधरवरेपि निरीक्ष्यतेलम् ॥ १३॥

(सं० टी०) किमिति-कुमुद्दती इश्चन्द्रः चा-ण्डालवेशमानि किं निजां द्युतिं संहरति किं वा तां द्युतिं तत्र मन्दीकरोति ? एवं सूर्यमेघाविष समानतयेव सर्वत्र व्यवहरतः ॥ १३ ॥

(भा० टो०) क्या चन्द्रमा चारहाख के घरं में प्रकाश नहीं करता है या उस के मकान में अपने प्रकाश की मन्द करता है। मालून होता है कि चन्द्रमा का प्रकाश सानान्यतया यब जगह एक सा हुआ करता है। ऐसे हो मूर्य भीर मेच भी एक सा व्यवहार वर्त्तते हैं॥ १३॥

किं पक्षपातिन इसे भवता नियुक्ता वेदादिसूर्यशशिभूपवनादयस्ते। नो चेत्तवापि करुणा सममेव युक्ता सर्वत्र सर्वनियमैरिदमेव सिद्धम् ॥ १४ ॥ (सं॰ टी॰) यदिमे चन्द्रादयो छोकहिताय भवता नियुक्तास्ते किं पक्षपातिनः नो चेत्पक्ष- पातस्ति तिवापि कृपा सामान्यतयैव सवत्रैक रूपा स्यादिति भावः ॥ १४॥

( भा० टी० ) जो कि आपने चन्द्र आदि पदार्थ छोक के खिये बनाये हैं वह क्या पक्षपात के हैं, यदि सामान्य के हैं ती आप की भी क्या सामान्यतः सर्वत्र होनी चाहिये पक्षपात छोड़ कर सज्जन वर्त्ता करते हैं ॥ १४॥

यो रक्षकः सकलविश्वजनस्य मन्ये नो नाशकः सभविता कथमप्यलं तत् । सामान्यतः कुरु कृपां सकलेष्वपि त्वं मा पश्य गौरवगुणान्मनुजेषु देव ॥१५॥ (संग्टी०) यः सर्वस्य रक्षकः सभक्षको न भवतीति नियमात्सर्वस्यैव जगतो रक्षा तवो-चितेति समायातम् ॥ १५॥

(क्रा० टी०) जो जगत् का रक्षक है वह क्रक्षक कदापि नहीं बन बकता है। इस लिये आप भी एक सी रूपा करें ॥१५॥

आपित्तमाप्य कुरुते स्मरणं मदीयं नो सौख्यमाप्य शठ एष मनुष्यवर्गः। नैनत्कुरुष्व हृदये विदितं समस्ते बालाः क्षुघोपगमनाज्जननीं स्मरन्ति॥१६॥ (सं॰ टी॰) जगदेतद्विपत्तौ मां स्मरति सौख्येषु नेति हृदये मा कुर्याः। यतो बालाः क्षुवीपगम एव मातरं पितरं च समरन्ति दुःख

(भाव ढोव) दुःखों के आने पर यह जगत नेरा स्मरण करता है खुखों में नहीं करता, यह भाव जपने हृद्य में न रिखयेगा क्यों कि वालक भूख खगने पर हो माता पिता को याद किया करते हैं ॥ १६ ॥

वेदेषु ते गुणगणानुगमै: प्रपूर्णे या या क्रिया विलिखितास्ति जगद्धिताय। सा सा भवच्छरणमेव दिशस्यनन्ता दीनार्तिनाशक ततः कुरु दृष्टिमाद्रीम् ॥१७॥

(सं० टी०) भवहुणवर्णनपरे वेदे यायाकिया जगतां हिताय दरीहद्ययते सा सा भवन्तसेव फल्डदमाबोधयति अतो वेदवतामपि भवानेव नायक इत्यर्थः॥ १७॥

( ना० टी० ) जाप के गुणानुवादों से नरे हुने नेदमें भी जो जो क्रिया देखने में आती हैं वह आप ही को इशारे से बतलाती हैं। इस जिये आप ही प्रभु हैं॥ १९॥

सर्वं जगत्करणया तव सौख्यमेति दुःखाणंवेपि निपतत्यपराधतस्ते। सामान्यभावमपि ते कृपया समेति भावत्रयेपि तव नायकतैव पूर्णा॥१६॥ (सं ॰ टी ॰) तव कृपया जगदेतत्सुखमामोति तवैव समक्षे कृतापराधं दुःखमेति तवैव करु-णया समानभावमेति। भावत्रयेप्यतो भवानेव नायक इत्यर्थः॥ १८॥

(भाव टीव) आप ही ही हवा से यह जगत् सुखी बनता है और आप के सामने अपराध करने से दुःखी बनता है। आप की करणा से ही सामान्यमाव में रहता है। इसलिये सीनों द्वप में आप ही इसके स्वामी हैं १८

दीनार्तिनाशक इति स्वयशोसित रक्ष्यं दोनान्समुद्धर तदा सकलैक्पायै:। नो चेत्तवैव चरितेषु विमानना स्यात् सर्वान्तरङ्गपरिबोधक सर्वमूर्ते॥ १९॥

(सं॰ टी॰) यहिं ते दीननाथ इति नाम सत्यं तर्हि दीनान्पालय । तदभावे तव चरिते विमानना जनानां स्यात् । नामसार्थक्यं चरिते-रादर्शयस्त्रति भावः ॥ १९॥

(भा० टी०) जो आप का नाम दीनानाथ है तो दीनों की रक्षा की जिये नहीं तो आप के चिरत्रों में वि-बहुता आयभी इचित्रये नाम का निर्वाह की जिये ॥१९॥ किं ते वदामि पुरतोधिक मेतदेव संप्रार्थये मम मतिस्तव वेदमार्गे। ख्या भवेत्सकलजालमपास्य रम्ये यस्मिन्गतागत इति व्यवहारनाशः॥२०॥ (सं० टी०) अतोधिकं तवाग्रे किं वक्तव्यस् इयमेव मे प्रार्थनास्ति यन्मे मितस्ते वैदिकमार्गे छग्ना स्यात् यत्र मार्गे गतानां गतागतं नदय-तीति भावः॥ २०॥

(भार टीक) साप के सामनें और क्या कहूं मेरी यहीं प्रार्थना है कि मेरा मन वैदिखधर्म को छोड़कर इतरधर्म में कदापि न छगे। सर्वदा इसी में बना रहे॥ २०॥

आर्योत्तमैरनुगते पथि यस्य जन्तो श्रेतोविशत्यनुदिनं स महाशयत्वम् । प्राप्नोति सम्यपदवीमपि चात्र लोके तस्मान्ममेयमनिशं त्विय देव भिक्षा ॥२१॥ (सं०टी०) यस्य पुरुषस्य मनः आर्थेरनुगते पथि रमते लोज लोके महाशयः सम्यश्च गीयते अहमपि तथाविधो भवेषमिति तवाग्रतो भिक्षा-करणम् ॥ २९॥

( भा० टी० ) जिंस पुरुष का मन श्रेष्ठों के अनुगत मार्ग में छगता है वह इस छोक में महाशय और सम्य कहने छायक होता है। मैं भी ऐसा बनूं यह आप के प्रार्थना है। २१॥ एवं भवे प्रतिपदं परमेश्वरं ये संप्रार्थयन्ति सकलप्रदइत्यवेक्ष्य । ते दु:स्वसागरमपास्य सुखेन पूर्णं भोक्षं समेत्य विचरन्ति यथेच्छकामाः ॥२२॥

(सं० टी०) एवं जगित ये जनाः परमेश्वरं सकलपद इति मत्वा संप्रार्थयन्ति ते दुःखानि विहाय मोक्षमार्गमुपेत्य च यथेच्छकामाः प्रभ-वन्तीत्यर्थः ॥ २२ ॥

( भा० टी० ) इस प्रकार संचार में को पुरुष समस्त पदार्थी के देने वाले देखर की प्रार्थना करते हैं वह दुः खों से मुक्त होकर यथेष्ठ जानन्द को प्राप्त होते हैं ॥ २२ ॥

इति श्रीमहर्तमान कविरताऽखिलानन्द शर्मप्रणीतं वटीकमीखरस्तुतिकाव्यं समाप्तम् अतः परं चनेलक्षणकान्यं प्रारम्यते यष्यायमाद्यः इलोकः

प्राप्ते विकारसमये मनसोयहारात् संरोधनन्तदुपसर्पणभावतोत्र । सहुर्मत्रर्णनपरेऽतिनवीनकाव्ये तहुर्मलक्षणभुदीरितमाद्यमुग्नैः ॥ १ ॥

(सं॰ टी॰) दशकं धर्मछक्षणिमित यनमनु ना प्रतिपादितं तदेव कात्र्यमुखेन वर्णायतुमनाः कविः प्रथमं धैर्यमाहः। प्राप्ते इति—मनसा विकारसमये प्राप्ते स्ति तदुपस्पणभावतः अर्थात् विकारोपस्पणभावात् यदाराञ्चेतसः सं-रोधनं तदेव धर्मवर्णनपरे अत्र नवीनकात्र्ये उप्रवृद्धिमद्भिः आद्यं धर्मछक्षणमुदीरितम् । विकारहेतौ स्ति विक्रियन्ते येषां न चतांति तएव धीरा इति भावः। धर्यछक्षणन्तु दर्पण-कारैराभिहितम् । व्यवसायादचळनं धर्य विक्रे महत्यपीति। उदाहरणं त्वस्य ॥ महादेवसमाधि-काळः। †दशरथस्तवनगमनसमयश्च। व्यवसाः

दिश \* श्रुताप्सरोगीश + बाहूतस्या + मनोनवद्गारश

येश्रं धर्मोपार्जनम् । तत्फलमार्यत्वम् । कांव्येत्र वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ १ ॥

( आठ टीठं ) चित्तं के विकार का जर्ब समयं उपस्थितं हो उस समय जो उस विकार से मन का रोकना उसी को धर्म का पहिंछा लक्षण चैर्य कहते हैं। विकारहेतु के प्राप्त होने पर जिनं का चित्तं चन्नुलं न ही वे ही पुरुष चीर कहने योग्य हैं। एसं का उदाहरण महादेव का समाधिकाल और रामधन्द्रं के बनं जाने का समय है ॥१॥

एवं घृत्यास्यमाद्यं धर्मेस्यगं वर्णयत्वां समास्यं द्वितीयं समणं वर्णयत्वाह —

दीषागमेपि खलसंगवशात् प्रवृत्ते ज्ञानोदयात्सहनशीलतया सहैक्यम् । यत्पूरुषस्य बहुरागमये हदन्ते भूषात्तदेव नितरां क्षमयानुगम्यम् ॥२॥

(सं० टी०) खेळलंगंवशात्प्रवृत्ते दोषागमे सत्यपि यत्पूरुषस्य हृदन्ते ज्ञानोदयात्सहनशी-छतया सह सांगत्यं भूयात्तदेव नितरां क्षम-याप्यनुगतम् क्षमावाच्यमित्यर्थः । बहुरागमये इति विशेषणं दोषागमस्य बोध्यम् ॥ २ ॥

(कार टीठ) दुष्ट सङ्ग से सत्पत्ति को प्राप्त हुये नाना युःखों से पूर्ण दोवीं के आने पर को जान के सद्य से सहमशीखता से साथ मन की चञ्चसता का रोकना उथे ही भद्र पुरुष समा कहा करते हैं। इसीसिये किसी किसी ने कहा भी हैं- "समा शस्त्रं करें यस्य दुर्जनः किं करियति। अनुणे पतितोबह्दः स्त्रयमेबोपशास्यति" इस का अथं अति सरख हैं॥ २॥

एवं समाहवं द्वितीयमङ्गं वर्षियत्वा दमाङ्यं वृतीयमङ्गं वर्षिययद्वाह-नैजेषु भिक्वविषयेषु यदिन्द्रियाणां चाञ्चल्यतोगमनमग्रहणात्प्रवृत्तम् । तिक्वग्रहोदमङ्गित प्रिथतः समन्तात् उक्तश्च धर्मविषये मनुनापि हर्षात् ॥३॥ (सं०टी०) इन्द्रियाणामनिरोधाचञ्चल-तया यत्तेषां निज २ विषयेषु गमनं तस्य निरोध एव दमइति कथ्यते । स एव धर्माङ्गतया मञ्ज-नापि निगदितएव ॥ ३ ॥

(भाव टीव) अपने २ विषयों में चलते हुये इन्द्रियों का को विधियूर्वक रोकना उसे दम कहते हैं। बही दम मनु जी ने भी धर्म का तीसरा अझ बतलाया है।इ॥ इत्यं दमारूर्य तृतीयमङ्गं वर्णयित्वा अस्तेय

इति चतुर्थमङ्गं निदर्शयबाह-कायेन चित्तविषयेण गिरा च लोके न ग्राह्ममन्यपुरुषस्य पदार्थजातम्। यैवंविधा जनमतिर्गदिता कवीन्द्रै-रस्तेयतापरतया किल सैव सर्वै: ॥१॥

(सं ६ टी ६ ) मनसा वाचा कर्मणा परस्वं कदापि कुत्रापि न प्राह्यमिति या मितः सैव किंछ सर्वेः कवीन्द्रैरस्तेयपरत्वेनोक्ता । यत्फलं महर्षिणा पतञ्जलिना ये।गसूत्रे खमुखेनोक्तम्। अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरह्वोपस्थानमिति । यमा-नुद्दिद्रयैतत्कथनं महर्षेः ॥ १८ ॥

(भाग टीन) सन से, वाणी से, श्रारी से दूनरें की वीज़ छेने के लिये दरादा करना चोरी में श्रामिल है। उस का न करना ही चोरी का त्याग है। उसे अस्तिय कहते हैं। उस का फल योगसूत्र में लिखा है कि सब रहीं की प्राप्ति ॥ चोरी से एक चोज़ को लेकर समस्त रहीं काळूट जाना कितनी सूर्वता की बात है। ध्यान दी जिये ॥ ४॥

थर्षस्यैवं चतुर्थे नङ्गं धर्णे यित्वा शीचारूयं पञ्चममङ्गं वर्णे यितुमनाः प्राह्म-

देहस्य निर्मलजलेन मनीमलस्य सत्येन भूतविक्ठतेरपि विद्यया च । यच्छोधनं विमलभावचयेन बुद्धे-स्तच्छोचिमत्यनुमतं मनुना स्वधर्मे ॥ ५ ॥ (सं॰ टी॰) अद्गिगीत्राणीति पद्यमुद्धिरयेदं कथनम्। देहस्य तोयेन, मनसः सत्येन, अन्तः सत्मनो विद्यातपोभ्यां, बुद्धेर्ज्ञानेन यच्छोधनं तच्छोचम् । तत्फलन्तु [ शोचात्स्वाङ्गजुगुप्सा-परेरसंसर्ग इति सूत्रमुखेन ] महर्षिभिरुक्तम् । एतदेव धर्मस्य पश्चममङ्गम् ॥ ५ ॥

( भाव टीव ) शरीर के मल का जल है, मन का वस्य है. अन्तरात्मा की विद्या और तर्प है, बुद्धि की बान है की मुद्ध करना है उने शीच कहते हैं जिन का पांक योग सूत्र में अपने शरीर में हुंगा और दूसरों के साथ न निक्ता कहाहै ॥ ५ ॥

एवं थलेस्य पञ्चमनङ्गं वर्णीयत्या सन्द्रियनिसंह।स्पर्य षष्ठमङ्गं वर्णियिश्वसाह—

दुःसङ्गतो यदिह वेदविरुद्धमार्गं सर्वेन्द्रियानुगमनं प्रतिभाति तस्य । वेदोक्तकर्भविषये यमनं वलेन धर्मस्य लक्षणमुदीरितमैतदेव ॥ ६॥

(संव दी०) वेदविष्ठस्मार्गे दुःसङ्गवशा-धदिन्द्रियाणां गमनं तस्य वेदोक्तकर्मणि निय-मनम् इन्द्रियनिग्रहः।इन्द्रियाणामितिचश्रस्त्रतया सर्वथा नियमनासंभवात् । यथा सामान्यत्या स्त्रीप्रवृत्ते निजयद्वीगमनं निग्रहानुग्रहणभूतम्। एतच्च व्याकरणमहाभाष्यं स्पष्टम्। एतत्फलन्तु मम्मटपाँदेजितेन्द्रियत्वं विनयस्य कारणामिति पद्यमुखेन काव्यप्रकाशे निद्धितम् ॥ ६॥

( प्राठ टीठ ) दुः बङ्ग के बज से वेदवा ह्या भागे में जी हिन्द्रयों का जाना वामान्यता के पाया जाता है, उन जा वेदा मुकूछ कर्मों में लगाना हिन्द्रयों का नियह कहाता है। विवे वामान्यता वे खी में प्रकृति होने पर अपनी खी में नियह काना महाशाब्य में लिखा है। हम का फल काव्यप्रकाश में हम का काल काव्यप्रकाश में हम का काल काव्यप्रकाश में हम का काल काव्यप्रकाश में

एवं चर्मस्य षष्ठमङ्गमावयर्यं सांवतं घीरित्यास्यं स्रम्भमङ्गं वर्णयसाङ् -

व्यत्कार्यमार्यपुरुषैरनुसेवितं तत्त् कार्यं समस्तमनुजैरिप कार्यमेव । नो तद्विरुद्धमिति या सुविवेचना सा धीरुच्यते मतिमतां प्रथमैः कवीन्द्रैः ॥ ॥॥

(सं ० द्री०) सज्जनानुष्ठितं कार्यं कर्नव्य-मिति या मितः। सैक घीहच्यते भव्येशार्यभद्रे-रिति स्थितम्॥ तद्विरुद्धिविचनमस्याः कार्यम्। आर्यजनानुगतस्य धर्माङ्गत्वं वदानुकूळकार्य-त्वात्॥ ७॥ (साठ टीठ) चित्र काल की ग्रेष्ठ पुरुष करें उस की करना चाहिये, उन से विरुद्ध कदार्थ न करना चाहिये, ऐमा की विचार का ग्राना है बही बुद्धि का चिह्न माना काता है॥ ९॥

> एवं धर्भस्य स्थानसङ्ग नृक्षा विद्याख्यसप्तमसङ्ग वर्णीयव्यक्षाह्—

नित्येषु नित्यमिति वस्तुषु कल्पना या शुद्धेषु शुद्धिनिति सौख्यमये सुखेति । आत्मेति चात्मिन यथार्थतया समुक्ता विद्येति सा तदितरा गदितास्त्यविद्या॥॥॥

(सं० टी०) नित्ये शुक्के सुखमये आत्मिन स्व नित्यं शुक्के सुखमयं आत्ममयं चेति यज्ज्ञानं सा विद्या, तदितरा अविद्या।सा च विद्या परा-परमेदेन द्विधा, तत्र पडक्कसहिता वेदचतुष्टया-त्मिका अपरा, ईश्वरप्राप्तिमूला शास्त्ररूपा परेति मण्डकोपनिषदि स्पष्टतया प्रतिपादितम् । अ-विद्या तु अनित्याश्चिद्वःखानात्मसु नित्यशुचि सुखात्मरूपातिरेवेति योगदर्शने स्पष्टम् । सैव पश्चक्केशमूलेति दिक् ॥ ८ ॥

( भाव टीव ) नित्य पदार्थ में नित्य बुद्धि रखना, शुद्ध में शुद्ध, खुखमय में खुखमय विद्या फहाती है। वह मुखक उपनिषद् भें दो प्रकार की मानी हुई है। एक अपरा, दूसरी परा। विद्या से फिल अविद्या है जो कि पांच क्रेगों का खूछ योगदर्शन में मानी गई है। दा

एवं धर्मस्याष्ट्रजं लक्षणगुक्ता सत्याख्यं नवसं छक्षणं वक्तुमनाःप्राह्न

ज्ञानादसंभवतयानुगते पदार्थे नेदं कथंचिदपि संभवितेति भावः । धर्मैकवर्णनपरे लघुकाव्यरते किंनो भया निगदितः किलसरयबुद्धा ॥९॥

(सं० टी०) असंभवदोषग्रस्ते पदार्थे नेदं कदापि संभविमिति यण्ज्ञानं तत्सत्यम्। तच्च ज्ञानोदयादिति हेतुः। फुळं त्वस्य सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफळाश्रयत्विमिति योगदर्शने समुक्तम्। न हि सत्यात्परोधर्मः। सत्य मेवज्ञयते नानृतम्। सत्येनोत्तिभता भूमिरिति सर्वत्र सत्यस्यैव मुख्य-त्वमुक्तम्॥ ९॥

(आठ टी०) अवस्त्रवह्मप दीय से ग्रस्त पदार्थ हैं कदापि संत्रवबुद्धि न करना सत्य कहाता है। जिस पदार्थ का लक्षण और प्रमाण से जान न हो उसे निष्या मानना चाहिये। चार प्रकार के प्रमाणों से अतिरिक्त पदार्थ कोई नहीं है॥ ९॥

एवं नवसं घर्मलक्षयां वर्णियत्वा आक्रीधारूयं व्याममङ्गं वर्णवनाह-शत्रोविंकारजनके मनसो विरोधे प्राप्ते प्रयोजनवशात्परमेपि योयम्। चित्ताविकारविषयः स महात्मवर्धे रक्रोध इत्यनुमतो मनुना प्रदिष्टः ॥ १०॥ (सं० टी०) मनसोविकार जनके परमे शत्री-विरोधे प्रयोजनवशास्त्राप्ते सति योयं चित्तावि-कारिवषयः समहात्मवर्षेरकोध इत्यनुमतः १० (भा० हो०) सन के विकारजनक शत्रु के विरोध उपस्थित होने पर जो चित्त के ऊपर विकार न आना वह सकोध कहाता है। वही घर्ष का दशन अङ्ग है॥१०॥ एवं दशाङ्गं धर्मे वर्णयितवा यमानां नियनानाञ्च तद्नुकू खत्वा त्रेषामि वर्णनमाह्न दु:खानुचिन्तनमहदिवमात्महेतोः स्वस्मात्परस्य मनसापिवदन्ति हिंसाम्। तत्त्यागएव नितरां गदितोस्त्यहिंसा-क्रपोयमेषु परमर्षिभिरु क्तएव ॥ ११ ॥ (सं० टी०) स्वस्मात्परस्य मनुजस्य निजप्रयो जनसिद्धये मनसा वाचा कर्मणा दुःखानुचिन्तनं

हिंसा, तत्त्पागएव अहिंसापदवाच्यः अतएव अहिंसा परमोधर्म इत्युक्तस्। तत्फलन्तु अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सिन्निष्या वैरत्याग इति योगसूत्रे समुक्तस् । वैरत्यागे मैठ्यं, मैठ्ये सौख्यमिति सामान्यत्या धर्मः ॥ ११॥

( भा० टी० ) तन मन धन से दूसरे के लिये दुःस पहुंचाना हिंगा में दाख़िल है। उस का छोड़ना ही अहिंगा कहाती है, बहो परमधर्म है, जिस का फल वैरत्याग, सब से नित्रता लीर सर्वत्र सस है। ११॥

> अस्तेयबत्ययोर्धर्शनं मनुवीक्षष्ठक्षणेषु समुक्तम्, चाम्यतं ब्रह्मवर्यमाह्-

यज्ञीयवीतपरिधानत एव गेहाह दूरे गुरो:कुलमवाप्य परिश्रमेण । वेदादिशास्त्रपठनाय निबन्धनं यत् तद्वसम्बर्धमिति सङ्गदितं यमेषु ॥ १२॥

(सं० टी०) यज्ञोपवीतसंस्कारादनन्तरम् गुरुकुलमवाप्य, वेदादिपठनाय यद् व्रतबन्धनं तद् ब्रह्मचर्णम्। ब्रह्म वेदस्तद्ध्यनाय कृतं व्रत-बन्धनं ब्रह्मचर्णम्। तत्फलन्तु ब्रह्मचर्णपतिष्ठायां वीर्यलाभ इति योगदर्शने स्पष्टमेव। ब्रह्मचर्णण कन्या युवानं विन्दते पतिमित्यादि बहुधा वद्पि प्रतिपादितमेव ॥ १२॥

(भा० टी०) यद्योपवीत संस्कार वे लेकर गुरुकुल में जाके जो वेद पढ़ने के लिये व्रतबन्ध करना है वह ब्रह्मचर्य है। उस का फल बीर्यलाभ प्रत्यक्ष है॥ १२॥

एवं ब्रह्मचर्यमावर्ये अपिरग्रहं वर्णयनाह-

भिक्षादिवृत्तिमधिगम्य विधिप्रयुक्ता-मागन्तुकस्य विधिवर्जितवस्तुराशेः । यद्वर्जनं तदपरिग्रह इत्यमुत्र सर्वे वदन्ति कवयो मुनयो नयज्ञाः ॥१३॥

(सं० टी०) भिक्षावृत्तिमाश्चित्य वेद्विरुद्ध-धान्यस्य यद्वर्जनं तद्परिग्रहवाच्यम्। जीवनाय मनुना भिक्षादयो वृत्तय उक्ताः। प्रतिग्रहस्तु न कदापि ग्राह्यः। प्रतिग्रहसमधौपि प्रसङ्गं तत्र वर्जयदिति मनुवचनात्। एतत्फलन्तु अपरि-ग्रहस्थैर्ये जन्मकथन्तासंबोध इति पातञ्जल-योगद्द्याने प्रतिपादितम्। एतत्सैवनेनैव त्रिकाल-दिश्चित्वं भवतीति भावः॥ १३॥

( प्रा० टी० ) तिक्षा आदि वृत्ति का आग्रय लेकरके को वेदवास्त्रकुषान्यका न लेना वह ही अपरिग्रह कहलाता है। उन का फल तीनों काछों का बोच होना कहा है। पहिले ऋषियों में यह था। आज कल ब्राह्मणों ने नष्ट अष्ट कर दिया है॥ १३॥

एवं यसानां वर्षनं विधाय नियमानां वर्णनमाह तत्र ग्रीवस्य कतवर्णनत्वास्त्रन्तोषाद्या निहिंश्यन्ते— अरूपेपि वस्तुनि विधेरुद्यादुपेते निविह एव करणीय इति प्रलोक्य । या शान्तिरुत्तमगुणा सकलार्थजाते सन्तोष इत्यनुमता किल सैव विज्ञैः ॥१८॥

(सं० ठी०) प्रारब्धवशादलपेपि पदार्थे समुपळ्छे सित निर्वाहबुद्ध्या वस्त्वन्तरानिच्छनं स एव सन्तोषः, तत्फळं सन्तोषादनुत्तमसुख-ळाभ इंति महर्षिणोक्तम् । \* नीतिकारैरपि तृष्णाक्षयसुखस्य सर्वोत्तमसुखत्वमुक्तम् ॥११॥

( भार टीर ) प्रारब्धवश से समय पर थो है ही पदार्थ के आने से निर्वाह बृद्धि करके को खल्णा का रोकना है वह सन्तरेव में दाखिल है। किस का फल सर्वोत्तम खललान माना गया है। इसी के बिना आज कल के मनुष्य दीन हीन से प्रतीत होते हैं। १४॥

टि॰ यच क्रामसुखं+सन्तोषामृत+सन्तोषेण विना यः+सन्तोष एव पुरु+ द्चिणाशाप्र+तेनार्थं तं श्रुतं तेन+सर्वोत्तमम् ॥

एवं बन्तोषं वर्षनियस्वा तपोवर्षयनाह्-वेदोक्तकर्मनियमादुव्रतबन्धनादी यदु दुःखमापतति तस्य यथाकथञ्जित् । प्राणात्ययेपि सहनं तदुदीरयन्ति सत्यं तपो नियमदत्तनिजान्तरङ्गाः ॥१५॥

(सं० टी०) वेदोक्तकर्मवज्ञात् प्रायश्चिता-दिषु चान्द्रायणकुच्छ्रचान्द्रायणद्वारा यद् दुःख-मुत्पद्यते तस्य सहनं तपः, शीतोष्णक्षुत्पिपासा-व्याधिचतुष्ट्यसहनं तदिति भावः , तत्फलं कार्यन्द्रियशुद्धिरशुद्धिक्षयात्तपस इति योगदर्शने प्रतिपादितम् । अन्यदिष तद्वर्णनं नीतिकारैंस्तत्र तत्रोपन्यस्तम् ॥ १५॥

( भा० टी. ) वेदोक्त कर्नों के बीच में जो नाना व्रत प्रायिक्षतों के कारण दुःख का सहन यानी भूख, प्रवास, सर्दी, गर्नी को को भोगना पड़ता है, उसे तप कहते हैं। वेदबाह्य तप को तप नहीं कहते हैं। जिस का फल अशुद्ध का स्रय माना जाता है ॥ १५॥

एवं तपोवर्णियत्वा स्त्राच्यायमाह-नित्यं गुरोः सिवधमेत्य नितान्तभक्तया सर्वे विधाय विधिबोधितकृत्यजातम् । वैदोपवैद्परिशीलनमेतदेव स्वाध्यायतामुपद्घाति जनोत्तमेषु ॥ १६॥

(सं० टी०) नित्यं संध्यादिकं विधाय गुरो-रुपान्ते यत्प्रतिदिनं वेदाध्ययनं तत्स्वाध्यायपद-वाच्यं तत्फलन्तु स्वाध्यायादिष्टदेवतासंप्रयोग इति स्पष्टम् । अतएव वेदाम्यांनो हि विप्रस्य परमं तप उच्यत इति मनुना प्रतिपादितम् । वेदेनैवेश्वरज्ञानलाभात् ॥ १६ ॥

(भाग टीन) प्रतिदिन जिनहीशादि कर्स खरहे गुंद के पास जाकर नसंगा से वेद वेदाङ्गों का जो पढना है, उसे खाध्याय कहते हैं। जिस्र का फंड ईखर की प्राप्ति साफ़ तीर पर योगदर्शन खंतलांता है॥ १६॥

एवं ब्वाच्यायमुक्केंबरप्रणिधाननाइ—
सर्वत्र सर्वमय ईम्बर एव सर्वा—
धारोऽजरोऽमर इति प्रविचारयं चित्ते ।
तस्यैव सद्गुणगणेष्वनुरागबुद्धि
द्वीरेरहिन शसदा हृदये समन्तात्॥ १७॥
(सं० टी०) सर्वव्यापी सर्वाधार ईम्बर
एवं नान्य इति मत्वा यत्तद्गुणानुरागित्वं तदीश्वरप्रणिधानम्। तत्फळं समाधिसिद्धिरीश्वर-

प्रिणधानादिति योगकारैहदाहृतम् । समाधि-सिद्धौ सर्वेसिद्धिः । यददृश्यं यद्दृश्यं सर्वे दृश्यं समाधिसिद्धेनेति भावः । अतो योगाभ्यासो-भ्यसनीय इति पूर्वाचार्याः ॥ १७ ॥

(आ। टी०) इस जगत का खामी एक ईखर ही है दूसरा कोई नहीं। ऐसा जान कर उसी के गुणों में अनुराग होना ईश्वरप्रणिधान कहाता है। उस का कछ समाधि सिद्धि है॥ १९॥

सहुर्मवर्णनपरं लघुकाव्यमेतह ये वर्तमानकविरतकृतं स्वकण्ठे। संस्थाप्य वैदिकपथेऽन्वहमेव रागाह यास्यन्ति ते न भवजालपथं कथंचित् १८

(सं० टी०) वैदिकधर्मवर्णनपरमतस्रधुकार्यं ये जनाः पठित्वा तत्रैवानुरक्ता भविष्यन्ति ते भवसागरदुःखैरयुक्ता भविष्यन्तीति भावः १८

( भाव टीव ) वैदिक्षधर्य के बतलाने वाले इस छोटे काव्य को को मनुष्य पढ़ कर वेदानुकूल कर्नी को करेंगे वह समस्त दुःखों से खुटकर सर्वदा आनन्द का अनुभव करेंगे॥ १८॥

इति श्रीमद्वतंनान कविरताऽखिलानन्दशमेवणीतं सटीकं घम्मेलक्षणकाव्यं समाप्तिमितस् ॥ अतः परं x शत्यवर्णनकाव्यं बारस्यते, धव्यायमाद्यः इस्रोक्षः

यानीश्वरेण ऋषिभिश्च परार्थहेती-राविष्कृतानि शुभमार्गनिबोधकानि । तान्येव मान्यपुरुषै निजधमेवृद्धये बोध्यानि सत्यमिदमाद्ममलं प्रदिष्टम् ॥१॥ (सं० टी०) यानि ऋग्वेदादीन्येकविंदाति शास्त्राणि परमेश्वरेण ऋषिभिश्च शुभमार्गनि-योजकानीति मत्वा लोकानुकम्पयाप्रकटीकृतानि तान्येव मान्यपुरुषैनिजधमेवृद्धये बोध्यानि, तदि-तराणि मनुष्यप्रणीतानि पुराणादीनि न। एतत् सत्याष्टके प्रथमं सत्यम् । अत्र च वसन्ततिल-काख्यं वृत्तम् ॥ १॥

( प्रा० टी० ) जो खोकोपढार के खिये परमेष्ठर तथा महियों ने मान्वेद खादि एक्कीस शास्त्र बनाये हैं उन ही को मान्य पुरुष अपने धर्म के खिये जानें। जो कि मनुष्य-कृत पुराणादि जाखग्रन्थ हैं उन के जपर कदापि विश्वास न करें। यह सत्याष्ट्रक में पहिला सत्य कहा है ॥ १॥

<sup>×</sup> द्यानन्दप्रंगीतमेतत्सत्याष्टकम्-भाषायां समुपत्तभ्यते तदेव काध्य-त्वेन मया समुद्रासितम् ।

श्राद्माश्रमे गुरुकुले गुरुसेवनादि धर्मानुवर्तनपरं षठमादिकं यत्। वेदादिशास्त्रनिचयस्य तदेव मन्ये सत्यं द्वितीयमुदितं मुनिना प्रसादात् ॥२॥ (सं० टी०) ब्रह्मचर्याश्रमे गुरुकुलमाप्य गुरुसेवास्वधर्मानुष्ठानपूर्वकं यद्देदादिसत्यशास्त्रा-उध्ययनं तद्दितीयं सत्यम्, मुनिना दयानन्देन समुक्तमिति शेषः॥ २॥

( कार्व टीर्व ) ब्रह्मचर्य आश्रम में गुरुकुंछ आकर गुरु-नेवां और स्वचर्मान्ष्ठांनपूर्वक को वेदादि चत्यशाखों का पढ़ना वह दूसरा सत्य काना गया है ॥ २॥

वेद।क्तधर्मपरिपालनमाश्रमेषु
सर्वेषु वर्णानयमानियमप्रभेदात्।
संध्यादिनित्यविधिसेवनमाद्रेण
सत्यं ततीयमपि वर्णितमेव देवै: ॥ ३॥

(सं ठी०) वर्णनियमपूर्वकं सर्वेष्वाश्रमेषु वैदोक्तवर्मपरिपालनम् आदरेण संध्यावन्दनाग्नि-हात्राचनुष्ठानं देवैदेयानन्दस्वामिभिस्तृतीयं सत्यं विणितम् ॥ ३ ॥

( भाव टीव ) वर्ण भेद से सब आग्रमों में वेदोक्त धर्म

खा पासन खरना और शांक्तपूर्वक संच्या सप अग्निहीत्र आदि नित्य कर्म करना तीसरा सत्य कहा गया है ॥३॥

काले स्वदारगमनं विधिना परस्ता च्छौते स्मृतिप्रणिहिते नुरितः स्वकृत्ये। वेदोक्तपञ्चामितयज्ञविधानिचन्ता तुर्यं निवेदयित सत्यपथं प्रभावात्॥४॥

(सं ॰ टी ॰) ऋतुसमये संस्कारविध्यनुकूल गर्भाधानसंस्कारपूर्वकं स्वदारगमनं श्रीतस्मार्त धर्मकृत्यानुगमनंपश्चमहायज्ञविधरनुष्ठानश्चस्वयः मेव चतुर्थं सत्यं निवेदयति ॥ १ ॥

( प्रा० टी०) ऋतु समय में वैदिक शैतिपूर्वक अवनी जी में गमन करना और श्रुतिस्यृतिप्रतिपाद्य धर्मानु-ष्टान में तत्पर रहकर पञ्जमहायञ्जिधि का प्रतिदिन सेवन करना चोधा नत्य माना जाता है ॥ ४॥

नित्यं यमेषु नियमेष्विप चानुपक्तिः सत्सङ्गतिश्च परमात्मिन भाववृक्तिः। योगेऽनुरिक्तरिधका परतोनुवान-प्रस्थाश्रमानुसरणं किल पञ्चमं स्यात्॥॥॥ (सं० टी०) प्रतिदिनं यमनियमविचार- करणं सत्सङ्गपूर्वकपरमात्मध्यानसाधनं यो-गाभ्यासाभ्यसनं वानप्रस्थाश्रमधारणश्च पश्चमं सत्यम् ॥ ५ ॥

( ना० हो०) प्रतिदिन यम जीर नियमों का विचार करना, सत्सङ्ग में रहकर परमात्मा का ध्यान घरना, योगाभ्यास का विचान करते हुये वानप्रस्य आश्रम का घारण करना, पांचवां सत्य माना जाता है॥ ५॥

वैराग्ययोगवरातो विरतिप्रभावात् संन्यासघारणमसक्तिरमुत्र भावे। वेदान्तशास्त्रपरिशीलनमात्मबुद्ध्या पष्टं समादिशतिस्वत्यमलं स्वभावात् ॥६॥ (सं० टी०) विचारिववकवैराग्यवद्यातः ऐहलौकिकपदार्थेष्वसक्तिः ततःपरं संन्यासाश्रम घृतिः आत्मबुद्धया वेदान्तशास्त्रपरिशीलनञ्च सर्वकर्मफलत्यागाद्यनुष्ठानविधानात्षष्ठं सत्यम् ६

(भाग टी०) विचार विवेक वैराग्यों के वश से मांमा-रिक पदार्थों में विरति करते हुये संन्यासाम्रम घारण कर इंग्ररध्यामपूर्वक वेदान्यशास्त्र का देखना छठा सत्य कहा गया है ॥ ६॥

विज्ञानपूर्वकमनर्थपराङ्मुखत्वं जन्मादिबन्धनविभञ्जनभावुकत्वम्। सङ्गानुलब्धबहुदोषनिराद्वतिश्च संबोधयत्यनुगमाद्यि सप्तमं तत्॥ ७॥

(सं॰ टी॰) ज्ञानविज्ञानाम्याम् अनर्थेषु पराङ्मुखता सर्वानर्थजन्ममरणहर्षशोककाम क्राघछोभमोहविनाशकारणोपगमनं संगदोष-त्यागानुष्ठानश्च सप्तमं सत्यमावेदयति ॥७॥

(भाव टीव) ज्ञान और विज्ञान से अनर्था से सन का हटाना, समस्त दोवों के मूल जन्म मरण हवं शोक कानादिकों का नाथ करना, सक्न दोपों को दूर हटाना सातवां सत्य माना जाता है॥ ३॥

क्रेशेतरातिगुणभाविमतापरस्ताद्ध भूतान्यतीत्य परमात्मपथं दिशन्ती । स्वाराज्यसिद्धिरिति या किल मोक्षमूला तत्प्राप्तिरष्टममुदाहरति स्म सत्यम् ॥८॥

(सं० टी०) अविद्याऽस्मितादिपञ्चक्लेश रहिता सत्वरजस्तमोऽतीता पञ्चमहाभूतातीत-गुणा परमात्मरूपं बेधयन्ती या स्वाराज्यसि-द्विमीक्षमूळा तत्प्राप्तिरष्टमं सत्यमादिशतीति भावः॥ ८॥ ( भा० टो० ) अविद्यादि पाञ्च क्रोगों से भिन्न तीनों गुणों मे रहित पञ्चमहाभूनविद्यार से पर केवल ईश्वर का गुण बतलाने बाली मोक्षमूल को स्वाराज्यसिद्धि उस का पाना भाठवां सत्य माना गया है ॥ ८॥

सत्याष्ट्रकं हृदि विवायं मनुष्यलोके श्रोवतंमानकविरत्नकृतं मनुष्याः । ये ये स्वकार्यमनुयान्ति विधिप्रदिष्टं ते ते पराभवपदं न हि यान्ति दैवात् ॥९॥

( तं० टी० ) श्रीवर्तमानकविरत्नकृतमतत् सत्याष्टकं हृदि विचार्य ये ये पुरुषाः विधिविहितं स्वस्वकार्यमनुयास्यन्ति ते ते दैवात्कदापि परा-भवं न यास्यन्तीति भावः ॥ ९ ॥

(भा० टी०) यतंमान कविरत का बनाया हुया यह मत्याष्टक, को पुरुष अपने हृद्य में विचार कर वेदोल अपने २ कर्मों को करेंगे वे कदावि पराभव को प्राप्त नहीं होंगे॥ ९॥

इति श्रीमहर्तमानकविरताऽखिलानन्दशर्मप्रणीतं सटीकं सत्याष्टकं पूर्तिमगात् ॥ ओ३स्॥ अतः परं \* गप्पवर्णनकाव्यं प्रारम्यते यस्यायम् द्याः स्रोकः—

व्यासेन सूत्ररचनापटुना न यानि सम्पादितानि रचितानि च यानि धूर्तैः। अष्टादशापि किल तानि पुराणकानि मिथ्येति दोषभरितानि विदन्तु विज्ञाः॥१॥

(सं॰ टी॰) वेदान्तद्द्यनसूत्रकारेण मह-विणा व्यासेन यानि न सम्पादितानि, प्रत्युत स्वार्थसाधनद्क्षेधूर्तैर्यानि रचितानि, तानि कि-छाष्टाद्द्यपुराणकानि। कुत्सायाङ्कन् । सर्वे विद्याः मिथ्यादोषग्रस्तानि अत्तप्वाप्रमाणभूतानि च विदन्तु तेषु विश्वासं मा कुर्वन्त्विति भावः। एत-दाद्यङ्गप्पम्। काव्येत्र वसन्तितिळकं वृत्तम् ॥१॥

(न्ना० टी०) वेदान्तदर्शन के बनाने वाले महर्षि व्यास की ने जिन की नहीं बनाया, बल्कि अपने मतलब के हुशियार पोप लोगों ने जिन को गढा है, ऐसे निश्या दोषग्रस्त अप्रमाण अठारकों पुराणों को विद्वान् जन कदापि न मार्ने। यह स्वामी को ने पहिला गण्य बतलाया है॥ १।।

<sup>\*</sup> भ्वादेराकृतिंगणत्वाद् गप्क मिध्यापरिभाषणे इति धातोरीणादिक प्रत्यये गप्पमिति भवति ॥

पाषाणमूर्त्तिमधिरोप्य कृतासित लोके या मन्दिरेषु मनुजानुकृतिप्रतिष्ठा । सा वेदमार्गविहिता न, ततो विरुद्धे-त्येतइ द्वितीयमपि गप्पमलं विचार्यम्॥२॥

(सं० टी०) या किल मन्दिरेषु चेतनेतर शिलाविनिर्मितमूर्तिमवस्थाप्य मनुष्यरूपराम रूष्णादिप्रतिकृतिपूजा मनुजैः कृतास्ति सा वदमार्गविहिता न, प्रत्युत ततो विरुद्धास्ति, एतद् दितीयं गप्पं विद्वज्ञनैबोध्यम् ॥ २ ॥

(भाव टीव) जो कि आज कल मन्दिरों में पत्थर की मूर्त्ति रख कर रामादि मनुष्यों की पूजा करना है वह वेदिकहु है। इस छिये उस को दूसरा गण्य मानना चाहिये।। २॥

शैवं जिनेन्द्रमतमन्यद्तः एथिव्यां रामानुजादिमनुजैरुपकल्पितं यत् । स्रोवेष्णवादिकमनन्तविपत्तिमूलं सर्वं मृषेति परिचिन्त्य परित्यजन्तु ॥३॥ (सं॰टी०)पृथिव्यां यन्मनुष्यैः सर्वविपत्तिमूलं शैवशाक्तवैष्णववल्लभरामानुजजैनवौद्धचार्वाक ब्राह्मादिमतं जातं परिकाल्पतमस्ति,तत्सर्वे मि-थ्या दुःखमूल्जिमिति मत्वा सर्वे परित्यजन्त्। एतदेव तृतीयं गप्पमिति विदांकुर्वन्तु ॥ ३॥

(भा० टो०) इत भारतवर्ष में जो कि आज कल मनुष्यों ने नवीन र शैवशाह जादि नी की निन्यानवें एल मत मान रक्षे हैं वे सब मूंठे और दुःख में छे जाने वाले माना विपित्तयों छे सूज जान कर बिद्धान् छोक उन में कदापि विश्वास न करें। यही सहिषं द्यानन्द तीवरा गण्य मानते हैं।। ३।।

यैरत्र विश्वबलये नरकोन्मुखानि हिंसापराणि बलिदानमयानि यतात्। विस्तारितानि विक्वतानि त एव सर्वे तन्त्रादयोपि परिहेयतया विवेचया: ॥१॥

(सं॰ टी॰) अत्र संसारे नरकप्रवर्तकानि हिंसाप्रधानानि बल्डिदान मद्यपान मांसभक्षणा-दीनि कुकमाणि यैविस्तारितानि ते तन्त्राद्यो प्रन्थाअपि सर्वेस्त्याज्याः, एतदेव चतुर्थे गप्पम्॥

( भा० टी० ) इस संसार के बीच में दुःख में छे जाने वाले, हिंसा कराने वाले, बिलदान, मद्यपान, नांस प्रक्षण आदि कुकर्म जिन्हों ने चलाये, ऐसे तन्त्र ग्रन्थों को कोई महाशय विद्वान् न देखें। यही स्थानी जी ने चीषा गण्य बतलाया है ॥ ४ ॥

यत्सेवनेन परिनश्यति शीम्रमेव लोके मतिर्मतिमतामपि सर्वथैव । मद्माहिफेनविजयाकुतमालजातं सर्वं तदार्यपुरुषैः परिहेयमारात् ॥ ५ ॥

(सं० टी०) यथां सेवनात् मतिमता-मपि सत्वरं मितः सर्वथा नश्यति तन्मद्यादि जातमार्थैर्न सेव्यम् । एतदेव पश्चमं गप्पम् । "बुद्धं लुम्पति यद् द्रव्यं मदकारि तदुच्यते"इति शाक्षेधरः ॥ ५ ॥

(भाग टीन) जिन के चेवन चे खुद्धिमानों की भी मति शीघ ही बिलकुल नाश को प्राप्त हो जाती है, ऐमे शराब, अफ़ीम, भांग, गांचा, तमाकू वग़ैरह जितनी नशे की चीज़ें हैं सब को छोड़ना चाहिये। यह पांचवां गण है॥ ॥॥

योषां विहाय निजधर्मरतां परस्ती संभोगपापपरिवर्धनदत्तभावाः । ये ये जगत्यनुदिनं विचरन्ति ते ते धूर्त्ताइति स्वहृदयेषु विचारयन्तु ॥ ६ ॥ (सं टो०) निजधर्मः पतिशुश्रूषा तद्वता निजपत्नीं विहाय परस्त्रीसंभागएव पापम् । तत्परिवर्धने दत्तभावाः सन्तः ये ये पुरुषाः जगति अनुदिनं विचरन्ति ते ते घूर्तां इति सर्वे जानन्तु। एतदेवाधर्मपरत्वात्षष्ठं गप्पम् ॥ ६ ॥

( ला० टी०) डेबा में तत्पर अपनी खी को छोड़कर को पुरुष इस संसार में पर्श्वी में व्यक्तियार काने को तत्पर होते हैं यह घूर्ल समझने वाहियें यह खटा गण्प माना गया है ॥ ६॥

द्यूतं तथा परिविनिन्दनमातमभावश्वीयं कुसङ्गइति लोकतले निषिद्धम् ।
यद्मत्प्रवृत्तमलमस्ति तदेत्र सर्वे
मान्यैर्जनैरनुदिनं परिहेयमेव ॥ ७॥

(सं॰ टी॰) लेकितले यद्यन्निषिद्धं यूनं-परिनन्दनम्-अभिमानित्वं-चौर्यं-कुसङ्गादिकं च प्रवृत्तमस्ति तत्सर्वं मान्यैर्जनैः प्रतिदिनं त्या-ज्यम्। एतदेव सप्तमं गप्पम्॥ ७॥

( भां टी ) इस संनार में जो जो निषिद्ध जूआ, दूसरे की बुराई, अभिमान, चोरी, कुसझ आदि फैंडे हुये हैं वह प्रति दिन छोड़ने चाहियें। यह सातमां गप्प बतलाया है ॥ ९ ॥

मिथ्याविकत्थनपर।पगुणानुवाद-मात्सर्यरागपरवञ्चकताच्छलानि । बोध्यानि धर्म्मनिरतैरतिदु:खहेतु-भूतानि गप्पमिदमष्टममुक्तमारात्॥द॥

(सं० टी०) मिथ्याविकत्थनं-परदोषकथनं-मात्सर्यकरणं-विषयरागवर्धनं-परवश्चकत्वमि-त्यादीनि यानि कुकर्माणि तानि सर्वैरिपि त्या-ज्यानीति भावः । एतदेवाष्टमं गप्पम् ॥ ८॥

( भार टी ) भूंत छइना, दूसरे छे दोघों का कहना, छछं इपन करना, विषयों में ज़ियादहतर फंनना आदि जितने कुकमें हैं इन को सब आये महाशय छोड़ें। यही आठगां गप्प है॥ ८॥

एतन्मया निगदितं छघुकाव्यस्ते गप्पाष्टकं यदुदितं मुनिनापि हर्षात्। नैजेषु बुद्धिपटलेषु विलिख्य सर्वे रालोच्यमेतदनुकूलतयैव हेयम्॥ ९॥ (सं० टा०) अत्र छघुकाव्यसंग्रहे-यन्



मुनिना दयानन्देन भाषया निद्धितं तद्गपा-ष्टकं काव्यरूपेण मयोक्तम् । तदेतत्सर्वे विचार्य निजनिजधर्मानुरताभवन्तु । पूर्वोक्तगप्पाष्टकाद् दूरनरं निवसन्तिनि भावः ॥ ९ ॥

( लाग टोग) इस [ लचुकान्यसंग्रह ] में जो स्वामी द्यानन्द जी ने लाठ गण्य बतला वे ये वह कान्यस्य से वर्णन किये गये। एन की इद्य में विचारके अपने २ घर्मानुकूल कर्नी में सब महाशय प्रमृत्त होकर कांत्रला-नन्दीं का अनुभव करें॥ ए॥

> दित श्री महर्तमानसविरता— अखिलानन्द्यम्भीप्रणीते लघुकाव्यसंग्रहे सटीकं गटपाष्टकं समाप्तिमगमत्॥ 🗙 ॥

> > -:0:-

२८-२-१८०७ ईसवी

U

## विज्ञापन

सर्व सज्जन महाशयों को विदित हो कि वर्तमान कविरत्न-पं० अखिलानन्द शम्मां शास्त्री जी का बनाया हुआ " खहत्काव्य-संग्रह " बहुत शीघ्र छपकर तैय्यार होगा। जिस का मूल्य॥) मात्र होगा। ग्राहक महोदय नीचे लिखे पते पर शीघ्र पत्रव्यव-हार करें॥ उस में इतने ग्रन्थ हैं—

- १-आर्यवृत्तेन्दुचन्द्रिका-छन्दोज्ञान के लिये है ॥
- २-वार्षिकोत्सवचंपू-जिस में सालाना जलसे हैं॥
- ३-परोपकारकलपद्ध्य-नाम ही से अर्थ जानिये॥
- 8-गुरुकुलोदयकाव्य-देखने से ही मा-लुम होगा ॥
- ५-उपनयनप्रशंसन-क्या ही अच्छा काव्य है॥

६-विवाहविनोदकाव्य-विवाहका वर्णन

७-शोकसंमूर्छनकाव्य-देखते ही रुला देता है॥

६-विद्याविनोदकाव्य-स्वयं ही खुलासा है। यह ६ विषय हैं॥

## निमस्य पुस्तक छपे तैयार हैं शीघ मंगाइये

श्रीमह द्यानन्दलहरी मूल्य 

आर्याशिरीभूषणकाव्य मूल्य ।)
लघुकाव्यसंग्रह मूल्य 

॥

तीनों पुस्तक लित संस्कृत छन्दोबहु हैं, साथ ही सब पर संस्कृतटीका और भाषाटीका निजकृत है॥

पता-

वर्त्तमान कविरत्न पं॰ अखिलानन्द शर्मा शास्त्री मु॰ पो॰ सहसवान, ज़िला–बदायूं

मह द्राम्य है म

多沙区的中国不同沙区的

(STEED IN STRUME

ं (४ प्रथम हेनासाम्मार्गिता)

rich more . Sprayers T.

THE POST POINTING ्रही या हो साई कर संस्कृतकीया जाता स्ट्रीकास विस्ताहत है ॥

का बीच माम कि मिलाम सामा भारती

इ० वी व सहस्रवास, जिल्हा-अहाल